महान् शासन-प्रभावक श्रीजिनप्रभसूरि

[अगरचन्द नाहटा]

जैन ग्रन्थों में जैन शासन की समय-समय पर महान् प्रभावना करने वाले आठ प्रकार के प्रभावक-पुरुषों का उल्लेख मिलता है। ऐसे प्रभावक पुरुषों के सम्बन्ध में प्रभावक चरित्रादि महत्वपूर्ण ग्रन्थ रचे गये हैं। आठ प्रकार के प्रभावक इस प्रकार माने गए हैं—प्रावचनिक धर्मकथी,वादी, नैमित्तिक, तपस्वी, विद्यावान्, सिद्ध और कवि। इन प्रभावक पुरुषों ने अपने असाधारण प्रभाव से आपत्ति के समय जैन शासन की रक्षा की, राजा-महाराजा एवं जनता को जैन धर्म के प्रतिबोध द्वारा शासन की उन्नति की एवं शोभा बढ़ाई। आर्यरक्षित अभयदेवसूरि को प्रावचनिक, पादलिप्तसूरि को कवि, विद्याबली और सिद्ध, विजयदेवसूरि व जीवदेवसूरि को सिद्ध, मल्लवादी वृद्धवादी, और देवसूरि को वादी, बप्पभट्टिसूरि, मानतुंगसूरि को कवि, सिद्धर्षि को धर्मकथी महेन्द्रसूरि को नैमित्तिक, आचार्य हेमचन्द्र को प्रावचनिक, धर्मकथी औरक वि प्रभावक, प्रभावक चरित्र की मुनि कल्याणविजयजी की महत्त्वपूर्ण प्रस्तावना में बतलाया गया है।

खरतरगच्छ में भी जिनेश्वरसूरि, अभयदेवसूरि, जिनवल्लभसूरि, जिनदत्तसूरि, मणिधारी-जिनचन्द्रसूरि और जिनपतिसूरि ने विविध प्रकार से जिन शासन की प्रभावना की है। जिनपतिसूरि के पट्टधर जिनेश्वरसूरि के दो महान् पट्टधर हुए—जिनप्रबोधसूरि तो ओसवाल और जिनसिंहसूरि श्रीमाल संघ में विशेष धर्म-प्रचार करते रहे। इसलिए इन दो आचार्यों से खरतरगच्छ की दो शाखाएं अलग हो गईं। जिनसिंहसूरि की शाखा का नाम खरतर आचार्य प्रसिद्ध हो गया, उनके शिष्य एवं पट्टधर जिनप्रभसूरि बहुत बड़े शासन-प्रभावक हो गए हैं जिनके सम्बन्ध में साधारणतया लोगों को बहुत ही कम जानकारी है। इसलिए यहां उनका आवश्यक परिचय दिया जा रहा है।

वृद्धाचार्य प्रबन्धावली के जिनप्रभसूरि प्रबन्ध में प्राकृत भाषा में जिनप्रभसूरि का अच्छा विवरण दिया गया है, उनके अनुसार ये मोहिलवाड़ी लाडनूं के श्रीमाल ताम्बी गोत्रीय श्रावक महाधर के पुत्र रत्नपाल की धर्मपत्नी खेतलदेवी के कुक्षि से उत्पन्न हुए थे। इनका नाम सुभटपाल था। सात-आठ वर्ष की बाल्यावस्था में ही पद्मावती देवी के विशेष संकेत द्वारा श्री जिनसिंहसूरि ने उनके निवास स्थान में जाकर सुभटपाल को दीक्षित किया। सूरिजी ने अपनी आयु अल्प ज्ञात कर सं० १३४१ किढवाणानगर में इन्हें आचार्य पद देकर अपने पट्टपर स्थापित कर दिया। उपदेशसप्ततिका में जिनप्रभसूरि सं० १३३२ में हुए लिखा है, यह सम्भवतः जन्म समय होगा। थोड़े ही समय में जिनसिंहसूरिजी ने जो पद्मावती आराधना की थी वह उनके शिष्य-जिनप्रभसूरिजी को फलवती हो गई और आप व्याकरण, कोश, छंद, लक्षण, साहित्य, न्याय, षट्दर्शन, मंत्र-तंत्र और जैन दर्शन के महान् विद्वान बन गए। आपके रचित विशाल और महत्त्वपूर्ण विविध विषयक साहित्य से यह भली-भांति स्पष्ट है। अन्य गच्छीय और खरतरगच्छ की रुद्रपल्लीय शाखा के विद्वानों को आपने अध्ययन कराया एवं उनके ग्रन्थों का संशोधन किया।

असाधारण विद्वत्ता के साथ-साथ पद्मावतीदेवी के सान्निध्य द्वारा आपने बहुत से चमत्कार दिखाये हैं जिनका वर्णन खरतरगच्छ पट्टावलियों से भी अधिक तपागच्छीय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थों में मिलता है और यह बात विशेष उल्लेख योग्य है। सं० १५०३ में सोमधर्म ने उपदेश-सप्ततिका नामक अपने महत्वपूर्ण ग्रन्थ के तृतीय गुरुत्वाधिकार के पंचम उपदेश में जिनप्रभसूरि के बादशाह को प्रतिबोध एवं कई चमत्कारों का विवरण दिया है। प्रारम्भ में लिखा है कि इस कलियुग में कई आचार्य जिन शासन रूपी घर में दीपक के सामान हुए। इस सम्बन्ध में म्लेच्छपति को प्रतिबोध को देने वाले श्रीजिनप्रभसूरि का उदाहरण जानने लायक है। अंत में निम्न श्लोक द्वारा उनकी स्तुति की गई है:—

स श्री जिनप्रभःसूरि-र्दुरिताशेषतामसः
भद्रं करोतु संघाय, शासनस्य प्रभावकः॥ १॥

इसी प्रकार संवत् १५२१ में तपागच्छीय शुभशील गणि ने प्रबन्ध पंचशती नामक महत्वपूर्ण ग्रन्थ बनाया जिसके प्रारम्भ में ही श्री जिनप्रभसूरिजी के चमत्कारिक १६ प्रबन्ध देते हुए अंत में लिखा है—

'इति कियन्तो जिनप्रभसूरो अवदातसम्बन्धाः"

इस ग्रन्थ में जिनप्रभसूरि सम्बन्धी और भी कई ज्ञातव्य प्रबन्ध हैं। उपरोक्त १६ के अतिरिक्त नं०२०,३०६,३१४ तथा अन्य भी कई प्रबन्ध आपके सम्बन्धित हैं। पुरातन प्रबन्ध संग्रह में मुनि जिनविजयजी के प्रकाशित जिनप्रभसूरि उत्पत्ति प्रबन्ध व अन्य एक रविवर्द्धन लिखित विस्तृत प्रबन्ध है। खरतरगच्छ बृहद्-गुर्वावली-युगप्रधानाचार्य गुर्वावली के अंत में जो वृद्धाचार्य प्रबन्धावली नामक प्राकृतकी रचना प्रकाशित हुई है। उसमें जिनसिंहसूरि और जिनप्रभसूरि के प्रबन्ध, खरतरगच्छीय विद्वान के लिखे हुए हैं एवं खरतरगच्छ की पट्टावली आदि में भी कुछ विवरण मिलता है पर सबसे महत्वपूर्ण घटना या कार्यविशेष का समकालीन विवरण विविध तीर्थकल्प के कन्यानयनीय महावीर प्रतिमा कल्प और उसके कल्प परिशेष में प्राप्त है। उसके अनुसार जिनप्रभसूरिजी ने यह मुहम्मद तुगलक से बहुत बड़ा सम्मान प्राप्त किया था। उन्होंने कन्नाणा की महावीर प्रतिमा सुलतान से प्राप्तकर दिल्ली के जैन मंदिर में स्थापित करायी थी। पीछे से मुहम्मद तुगलक ने जिनप्रभसूरि के शिष्य 'जिनदेवसूरि को सुरत्तान सराइ दी थी जिनमें चार सौ श्रावकों के घर, पौषधशाला व मन्दिर बनाया उसी में उक्त महावीर स्वामी को विराजमान किया गया। इनकी पूजा व भक्ति श्वेताम्बर समाज ही नहीं, दिगम्बर और अन्य मतावलम्बी भी करते रहे हैं।

कन्यानयनीय महावीर प्रतिमा कल्प के लिखनेवाले 'जिनसिंहसूरि-शिष्य' बतलाये गये हैं अतः जिनप्रभसूरि या उनके किसी गुरुभ्राता ने इस कल्प की रचना की है। इसमें स्पष्ट लिखा है कि हमारे पूर्वाचार्य श्री जिनपतिसूरि जी ने सं० १२३३ के आषाढ़ शुक्ल १० गुरुवार को इस प्रतिमा की प्रतिष्ठा की थी और इसका निर्माण जिनपति सूरि के चाचा मानदेव ने करवाया था। अन्तिम हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज के निधन के बाद तुर्कों के भय से सेठ रामदेव के सूचनानुसार इस प्रतिमा को कंयवास स्थल की विपुल बालू में छिपा दिया गया था। सं० १३११ के दारुण दुर्भिक्ष में जोज्जग नामक सूत्रधार को स्वप्न देकर यह प्रतिमा प्रगट हुई और श्रावकों ने मन्दिर बनवाकर विराजमान की। सं० १३८५ में हांसी के सिकदार ने श्रावकों को बन्दी बनाया और इस महावीर बिम्ब को दिल्ली लाकर तुगलकाबाद के शाही खजाने में रख दिया।

जनपद विहार करते हुए जिनप्रभसूरि दिल्ली पधारे और राजसभा में पण्डितों की गोष्ठी द्वारा सम्राट को प्रभावित कर इस प्रभु-प्रतिमा को प्राप्त किया। मुहम्मद तुगलक ने अर्द्धरात्रि तक सूरिजी के साथ गोष्ठी की और उन्हें वहीं रखा। प्रतः काल संतुष्ट सुलतान ने १००० गायें, बहुत सा द्रव्य, वस्त्र-कंवल, चंदन, कर्पूरादि सुगंधित पदार्थ सूरिजी को भेंट किया। पर गुरुश्री ने कहा ये सब साधुओं को लेना अकल्प्य है। सुलतान के विशेष अनुरोध से कुछ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वस्त्र-कम्बल उन्होंने 'राजाभियोग' से स्वीकार किया और मुहम्मद तुगलक ने बड़े महोत्सव के साथ जिनप्रभसूरि और जिनदेवसूरि को हाथियों पर आरूढ़ कर पौषधशाला पहुँचाया। समय-समय पर सूरिजी एवं उनके शिष्य जिनदेवसूरि को विद्वत्तादि से चमत्कृत होकर सुलतान ने शत्रुंजय, गिरनार, फलौदी आदि तीर्थों की रक्षा के लिए फरमान दिए। कल्प के रचयिता ने अन्त में लिखा है कि मुहम्मद शाह को प्रभावित करके जिनप्रभसूरिजी ने बड़ी शासन प्रभावना एवं उन्नति की। इस प्रकार पंचम काल में चतुर्थ आरे का भास कराया।

उपर्युक्त कन्नाणय महावीर कल्प का परिशेष रूप अन्य कल्प सिंहतिलकसूरि के आदेश से विद्यातिलकमुनि ने लिखा है जिसमें जिनप्रभसूरि और जिनदेवसूरि की शासन प्रभावना व मुहम्मद तुगलक को सविशेष प्रभावित करने का विवरण है। ये दोनों ही कल्प जिनप्रभसूरिजी की विद्यमानता में रचे गए थे। इसी प्रकार उन्हीं के समकालीन रचित जिनप्रभसूरि गीत तथा जिनदेवसूरि गीत हमें प्राप्त हुए जिन्हें हमने सं० १९९४ में प्रकाशित अपने ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में प्रकाशित कर दिया है। उनमें स्पष्ट लिखा है सं० १३८५ के पौष शुक्ल ८ शनिवार को दिल्ली में मुहम्मद साह से श्रीजिनप्रभसूरि मिले। सुलतान ने उन्हें अपने पास बैठाकर आदर दिया। सूरिजीने नवीन काव्यों द्वारा उसे प्रसन्न किया। सुलतान ने इन्हें धन-कनक आदि बहुत सी चीजें दी और जो चाहिए, मांगने को कहा पर निरीह सूरिजी ने उन अकल्प्य वस्तुओं को ग्रहण नहीं किया। इससे विशेष प्रभावित होकर उन्हें नई वस्ती आदि का फरमान दिया और वस्त्रादि द्वारा स्वहस्त से इनकी पूजा की।

सं० १९८६ में पं० लालचन्द भ० गांधी का जिनप्रभसूरि और सुलतान मुहम्मद सम्बन्धी एक ऐतिहासिक निबन्ध 'जैन' के रौप्य महोत्सव अंक में प्रकाशित हुआ। जिसे श्री हरिसागरसूरिजी महाराज की प्रेरणा से परिवर्द्धित कर पंडितजी ने ग्रन्थ रूप में तैयार कर दिया, जिसे सं० १९९५ में श्रीजिनहरिसागरसूरि ज्ञान भण्डार, लोहावट से देवनागरी लिपि व गुजराती भाषा में प्रकाशित किया गया।

प्रतिभासम्पन्न महान् विद्वान जिनप्रभसूरि जी की दो प्रधान रचनाएँ विविधतीर्थकल्प और विधिमार्ग-प्रपा मुनि जिनविजयजी ने सम्पादित की है, उनमें से विधि-प्रपा में हमने जिनप्रभसूरि सम्बन्धी निबन्ध लिखा था। इसके बाद हमारा कई वर्षों से यह प्रयत्न रहा कि सूरि-महाराज सम्बन्धी एक अध्ययनपूर्ण स्वतन्त्र बृहद्ग्रन्थ प्रकाशित किया जाय और महो० विनयसागरजी को यह काम सौंपा गया। उन्होंने वह ग्रन्थ तैयार भी कर दिया है, साथ ही सूरिजी के रचित स्तोत्रों का संग्रह भी संपादित कर रखा है। हम शीघ्र ही उस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ को प्रकाशन करने में प्रत्यनशील हैं।

सूरिजी सम्बन्धी प्रबन्धों की एक सतरहवीं शती की लिखित संग्रह प्रति हमारे संग्रह में है, पर वह अपूर्ण ही प्राप्त हुई है। हम उपदेशसप्तति प्रबन्ध-पंचशती एवं प्रबन्ध संग्रहादि प्रकाशित प्रबन्धों को देखने का पाठकों को अनुरोध करते हैं जिससे उनके चामत्कारिक प्रभाव और महान् व्यक्तित्व का कुछ परिचय मिल जायगा। जिनप्रभसूरिजी का एक महत्वपूर्ण मंत्र-तंत्र सम्बन्धी ग्रन्थ रहस्यकल्पद्रुम भी अभी पूर्ण रूप से प्राप्त नही हुआ, उसकी खोज जारी है। सोलहवीं शताब्दी की प्रति का प्राप्त अन्तिम पत्र यहां प्रकाशित किया जा रहा है।

'रहस्यकल्पद्रुम'

'''त संघ प्रत्यनीकानां भयंकरादेशाः। करीयं जयः। स्वदेशे जयः परदेशे अपराजितत्वं। तीर्थादिप्रत्यनीकमध्ये एतत्त्रयमस्य महापीठस्य स्मरणेन भवति। ॐ ह्रीं महामातंगे शुचि चंडालो अमुकं दह २ पच २ मथ २ उच्चाटय २ ह्रुं फुट् स्वाहा॥ कृष्ण खडी खंड १०८ होमयेत्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उच्चाटनं विशेषतः। संपन्नी विषये। ॐ रक्त चामुंडे नर शिर तुंड मुंड मालिनीं अमुकीं आकर्षय २ ह्रीँ नमः। आकृष्टि मंत्र। सहस्त्रत्रयजापात् सिद्धि सिद्धिः पश्चात् १०८ आकर्षयति। ॐ ह्रीँ प्रत्यंगिरे महाविद्ये येन केनचित् पापं कृतं कारितं अनुमतं वा नश्यतु तत्पापं तत्रैव गच्छतु"

ॐ ह्रीँ प्रत्यगिरे महाविद्ये स्वाहा वार २१ लवणडली जच्चा आतुरस्योपरि भ्रामयित्वा कांजिके क्षिप्त्वा। आतुरे ढाल्यते कार्मणं भद्रो भवति।

उभयलिंगी बीज ७ साठी चोखा ६ पली १ गोदूध। ऋतुस्नातायाः पानं देयं स्निग्धमधुरभोजनं। ऋतुगर्भोत्पत्तिप्रधानसूकडिदुवारन् वात् एकवर्ण गोदुग्धेन पीयते गर्भाधानाद्दिन ७५ अनंतर दिन ३ गर्भव्यत्ययः ॥छ॥

संवत् १५४६ वर्षे श्रावण सुदि १३ त्रयोदशी दिने गुरौ **श्रीमड५महादुर्ग श्री खरतरगच्छे श्रीजिनभद्रसूरि** पट्टालंकार श्री **श्रीजिनचन्द्रसूरि** पट्टोदया चलचूला सहस्त्रकरावतार श्री संप्रतिविजयमान **श्रीजिनसमुद्रसूरि** विजयराज्ये श्री वादीन्द्र चक्रचूडामणि श्रीतपोरत्न महोपाध्याय विनेय वाचनाचार्य वर्य श्री साधुराज गणिवराणामादेशेन शिष्यलेश ..... लेखि श्री रहस्य कल्पद्रुम-महाम्नायः ॥छ॥छ॥ श्रेयोस्तु। पं० भक्तिवल्लभ गणिसान्निध्येन ॥

[पत्र ११ वां प्राप्त किनारे त्रुटित]

उपर्युक्त ग्रन्थ का उल्लेख जिनप्रभसूरिजी ने व उनके समकालीन रुद्रपल्लीय सोमतिलकसूरि रचित लघुस्तव टीकादि में प्राप्त है। यह टीका सं० १३९७ में रची गई और राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर से प्रकाशित है।

बीकानेर के वृहद् ज्ञानभंडार में हमें बहुत वर्ष पूर्व इस ग्रन्थ का कुछ अंश प्राप्त हुआ था जिसे जैन सिद्धान्तभास्कर एवं जैन सत्यप्रकाश में प्रकाशित किया। उसके बाद उपर्युक्त १६वीं शती की प्रति का अन्तिम पत्र प्राप्त हुआ। इस प्राप्त अंश की नकल उपर दी है। इस ग्रन्थ की पूरी प्रति का पता लगाना आवश्यक है। किसी भी सज्जन को इसकी पूरी प्रति की जानकारी मिले तो हमें सूचित करने का अनुरोध करते हैं।

श्री जिनप्रभसूरिजी और उनके विविध तीर्थकल्प के सम्बन्ध में मुनि जिनविजयजी ने लिखा है—"ग्रन्थकार (जिनप्रभसूरि) अपने समय के एक बड़े भारी विद्वान और प्रभावशाली थे। जिनप्रभसूरि ने जिस तरह विक्रम की सतरहवीं शताब्दी में मुगल व सम्राट अकबर बादशाह के दरबार में जैन जगद्गुरु हीरविजयसूरि (और युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि) ने शाही सम्मान प्राप्त किया था उसी तरह जिनप्रभसूरि ने भी चोदहवीं शताब्दी में तुगलक सुल्तान मुहम्मद शाह के दरबार में बड़ा गौरव प्राप्त किया। भारत के मुसलमान बादशाहों के दरवार में जैनधर्म का महत्व बतलाने वाले और उसका गौरव बढ़ाने वाले शायद सबसे पहले ये ही आचार्य हुए।

विविधतीर्थकल्प नामक ग्रन्थ जैन साहित्य की एक विशिष्ट वस्तु है। ऐतिहासिक और भौगोलिक दोनों प्रकार के विषयों की दृष्टि से इस ग्रन्थ का बहुत कुछ महत्त्व है। जैन साहित्य ही में नहीं, **समग्र भारतीय साहित्य में भी इस प्रकार का कोई दूसरा ग्रंथ अभी तक ज्ञात नहीं हुआ।** यह ग्रन्थ विक्रम की चौदहवीं शताब्दी में जैनधर्म के जितने पुरातन और विद्यमान तीर्थस्थान थे उनके सम्बन्ध में प्रायः एक प्रकार की "गाइड बुक" है इसमें वर्णित उन तीर्थों का संक्षिप्त रूप से स्थान वर्णन भी है और यथाज्ञात इतिहास भी है।

प्रस्तुत रचना के अवलोकन से ज्ञात होता है कि इतिहास और स्थलभ्रमण से रचयिता को बड़ा प्रेम था। इन्होंने अपने जीवन में भारत के बहुत से भागों में परिभ्रमण किया था। गुजरात, राजपूताना, मालवा, मध्य-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रदेश, बराड़, दक्षिण, कर्णाटक, तेलंग, बिहार, कोशल, अवध, युक्तप्रान्त और पंजाब आदि के कई पुरातन और प्रसिद्ध स्थलों की इन्होंने यात्रा की थी। इस यात्रा के समय उस स्थान के बारे में जो जो साहित्यगत और परम्परा-श्रुत बातें उन्हें ज्ञात हुईं उनको उन्होंने संक्षप में लिपिबद्ध कर लिया। इस तरह उस स्थान या तीर्थ का एक कल्प बना दिया और साथ ही ग्रन्थकार को संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं में, गद्य और पद्य दोनों ही प्रकार से ग्रन्थ रचना करने का एक सा अभ्यास होने के कारण कभी कोई कल्प उन्होंने संस्कृत भाषा में लिख दिया तो कोई प्राकृत में। इसी तरह कभी किसी कल्प की रचना गद्य में कर ली तो किसी की पद्य में।

जिनप्रभसूरि का विधिप्रपाग्रन्थ भी विधि-विधानों का बहुत बड़ा और महत्वपूर्ण संग्रह है। जैन स्तोत्र आपने सात सौ बनाये कहे जाते हैं, पर अभी करीब सौ के लग-भग उपलब्ध हैं। इतने अधिक विविध प्रकार के और विशिष्ट स्तोत्र अन्य किसी के भी प्राप्त नहीं हैं। कल्पसूत्र की "सन्देहविषौषधि" टीका सं० १३६४ में सबसे पहले आपने बनाई। सं० १३५६ में रचित द्व्याश्रय महाकाव्य आपकी विशिष्ट काव्य प्रतिभा का परिचायक है। सं० १३५२ से १३९० तक की आपकी पचासों रचनायें स्तोत्रों के अतिरिक्त भी प्राप्त हैं। सूरि मन्त्रकल्प एवं चूलिका ह्रींकार कल्प, वर्द्धमान विद्या और रहस्यकल्पद्रुम आपकी विद्याओं व मंत्र-तंत्र सम्बन्धी उल्लेखनीय रचनाएं हैं। अजितशांति, उवसग्गहर, भयहर, अनुयोगचतुष्टय, महावीर-स्तव, षडावश्यक, साधु प्रतिक्रमण, विदग्धमुखमंडन आदि अनेक ग्रन्थों की महत्त्वपूर्ण टीकाएं आपने बनाईं। कातन्त्र-विभ्रमवृत्ति, हेम अनेकार्थ शेषवृत्ति, रुचादिगण वृत्ति आदि आपकी व्याकरण विषयक रचनाएं हैं। कई प्रकरण और उनके विवरण भी आपने रचे हैं, उन सब का यहां विवरण देना संभव नहीं।

जिनप्रभसूरिजी की एक उल्लेखनीय प्रतिमा महातीर्थ शत्रुञ्जय की खरतर-वसही में विराजमान है जिसकी प्रतिकृति इस ग्रन्थ में दी गई है। जिनप्रभसूरि शाखा सतरहवीं शताब्दी तक तो बराबर चलती रही जिसमें चारित्रवर्द्धन आदि बहुत बड़े-बड़े विद्वान इस परम्परा में हुए हैं।

जिनप्रभसूरि का श्लेषिक द्व्याश्रय काव्य पालीताना से अपूर्ण प्रकाशित हुआ था उसे सुसम्पादित रूप से प्रकाशन करना आवश्यक है।

हमारी राय में श्री जिनप्रभसूरिजी को यही गौरवपूर्ण स्थान मिलना चाहिए जो अन्य चारों दादा-गुरुओं का है। इनके इतिहास प्रकाशन द्वारा भारतीय इतिहास का एक नया अध्याय जुड़ेगा। सुलतान मुहम्मद तुगलक को इतिहास कारों ने अद्यावधि जिस दृष्टिकोण से देखा है वस्तुतः वह एकाङ्गी है। जिनप्रभसूरि सम्बन्धी समकालीन प्राप्त उल्लेखों से यह सिद्ध होता है कि वह एक विद्याप्रेमी और गुणग्राही शासक था।

ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में प्रकाशित श्रीजिनप्रभ-सूरि के एक गीत से श्रीजिनप्रभसूरिजी ने अश्वपति कुतुबुद्दीन को भी रंजित व प्रभावित किया था—

आगमु सिद्धंतुपुराण वखाणीइए पडिबोहइ सव्वलोइए
जिणप्रभसूरि गुरु सारिखउ हो विरला दीसइ कोइ ए॥
आठाही आठामिहि चउथि तेड़ावइ सुरिताणु ए।
पुहसिनु मुखु जिनप्रभसूरि चलियउ जिमि ससि इंदु विमाणि ए॥
असपति कुतुबदीनु मनिरंजिउ, दीठेलि जिनप्रभसूरि ए
एकंतिहि मन सासउ पूछइ, राय मणारह पूरि ए॥

तपागच्छीय जिनप्रभसूरि प्रबन्धों में पीरोजसाह को प्रतिबोध देने का उल्लेख मिलता है पर वे प्रबन्ध, सवासौ वर्ष बाद के होने से स्मृति दोष से यह नाम लिखा जाना संभव है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org